शोध-पत्र

भारतीय भाषाओं में दलित स्त्री काव्य

डॉ. सुनीता खुराना

सदियों से स्त्री के प्रति होते आए शोषण और अन्याय की प्रतिक्रिया-स्वरूप स्त्री जब अपने अधिकारों के प्रति सजग हुई तो स्त्री विमर्श का जन्म हुआ। अपनी अस्मिता के लिए, स्व की पहचान के लिए किए गए संघर्ष का नाम ही स्त्री विमर्श है। पुरुष वर्चस्ववादी वातावरण की घुटन से बाहर निकालने का श्रेय स्त्री विमर्श को ही जाता है। प्रसिद्ध लेखिका प्रभा खेतान कहती हैं-"आज स्त्रियों ने सदियों की खामोशी तोड़ी है। उसकी नियति में बदलाव है। उसके व्यक्तिगत जीवन का उद्देश्य, दर्शन, उसका मन-मिजाज सभी तो बदल रहा है।"[1] यह बदलाव की चेतना अचानक ही नहीं आई। इसके पीछे सदियों से होते आए अपमान, तिरस्कार और शोषण का एक लंबा इतिहास रहा है। रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "अत्यधिक बंधन विद्रोह को जन्म देता है।" पीढ़ियों से शोषित दलित स्त्री के परिप्रेक्ष्य में यह बात खरी उतरती है। रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार "विद्रोह, बगावत या क्रांति कोई ऐसी चीज़ नहीं होती जिसका विस्फोट अचानक होता हो। घाव फूटने से पहले बहुत काल तक पकता रहता है। विचार भी चुनौती लेकर खड़े होने के वर्षों पहले तक अर्द्धजाग्रत अवस्था में फैले रहते हैं।"[2] बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दौर में स्त्री, दलित और आदिवासी समाज ने अपने अस्तित्व की तलाश में अपने वजूद को पुनर्स्थापित करने का कार्य आरंभ किया। जातीय शोषण व दंश का अनुभव दलित स्त्री और पुरुष दोनों के जीवन का कटु सत्य रहा है। डॉ. सुभाषचंद जाति के आधार पर समाज के बंटवारे का विरोध करते हुए कहते हैं-"भारतीय समाज का सबसे दर्दनाक व घिनौना पहलू है-वर्णव्यवस्था। जिसे धर्म व कानून का रूप देकर समाज में असमानता को वैधता देने वाली इस व्यवस्था को लागू किया गया। जन्म पर किसी मनुष्य का अधिकार नहीं है और न ही उसकी इच्छा। किसी व्यक्ति को यह नहीं पूछा जाता कि उसे किस वर्ग, समुदाय, जाति में जन्म लेना है। उसे हिंदू बनना है या मुसलमान, गोरा बनना है या काला। लेकिन जिस समाज में वह पैदा होता है उस समाज में मौजूद विचारों, संस्कारों, पूर्वाग्रहों, मान्यताओं, रिवाजों, विश्वासों का उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है।"[3] वर्णव्यवस्था और जाति व्यवस्था में बांधकर दलितों का शोषण होता रहा। बाबा साहेब अंबेडकर ने उन्हें दासत्व से मुक्ति पाने का मार्ग सुझाया। उनमें नए प्राणों का संचार किया और दलित आंदोलन की नींव रखी।

अस्मिता के लिए किया गया संघर्ष जब आंदोलन का रूप ले लेता है तो वह अपनी आवाज़ को व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर सकता है। दलित विमर्श ने भी जब अपना शुरुआती घोषणापत्र प्रस्तुत किया तो वह व्यापक धरातल पर अवस्थित दिखाई दिया। ऐसा लगने लगा कि ब्राह्मणवादी और पितृसत्तात्मक व्यवस्था में जो शोषण होता आया है, उसका अंत होगा और एक नई शोषणरहित, मानवीय समाज व्यवस्था सामने आएगी किंतु वास्तविकता इसके विपरीत है। स्त्री शोषण के प्रश्नों को अनदेखा करता हुआ यह आंदोलन एकांगी बनकर रह गया। सूरज बड़त्या के अनुसार-"हिंदी में जन दलित साहित्य की शुरुआत हुई थी तो यह उम्मीद की गई थी कि प्रगतिशील साहित्य में अनकहे और छूट गए सवालों और मुद्दों को दलित साहित्य शामिल करेगा। साथ ही इससे यह भी आशा थी कि वे अपनी मुक्ति के साथ अन्य दलित, शोषित वर्गों, समुदायों और अस्मिताओं को भी लेकर चलेगा। दलित लेखकों से यह उम्मीद की गई थी कि वे दलित स्त्री के

Refereed Journal • ISSN : 2347-6605

साथ-साथ अन्य शोषित सवर्ण स्त्रियों की आवाज़ को भी अपनी आवाज़ में शामिल करेंगे लेकिन लगता है कि दलित समुदाय की पहचान और सम्मान का यह आंदोलन केवल दलित पुरुषों की पहचान और सम्मान में खोता जा रहा है।"[4] सवर्ण स्त्री जहां दोहरे शोषण का शिकार है वहीं दलित स्त्री तिहरे शोषण का शिकार रही। वर्ण, वर्ग और लिंग की तिहरी मार झेलती हुई स्त्री ने अपने लेखन द्वारा अपने प्रति हुए अन्याय और संघर्ष को मुखरता से अभिव्यक्त किया। आज अपने अदम्य प्रयासों से दलित लेखिकाओं ने साहित्य में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। अपने अनुभवों के आधार पर वेदनापूर्ण यथार्थ को अभिव्यक्त किया है किंतु तब भी उसके लेखन को उतना महत्व नहीं मिल पाया जितना मिलना चाहिए था। ओम प्रकाश वाल्मीकि कहते हैं कि-"स्त्री दलितों में भी दलित है। इसके लिए व्यवस्था जनित परंपरावादी सोच उत्तरदायी है, जो स्त्री को दूसरे दर्जे का नागरिक ही नहीं, पांव की जूती भी समझती है।"[5]

डॉ. अंबेडकर नारी उत्थान में विश्वास रखते थे। उन्होंने दलित आंदोलनों की नींव रखकर उनमें जाग्रति फैलाई। उनकी प्रेरणा से दलित स्त्री में सामाजिक, सांस्कृतिक, मानसिक दृष्टि से एक नयी चेतना का संचार हुआ। उसने अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना सीखा। मलयालम दलित लेखिका मेरली के. पुन्नस बाबा साहब साहब के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहती हैं-

"अज्ञात थे हम भगवान के दर्शन से
अज्ञात थे हम अपने ही अधिकारों से
बिता रहे थे जीवन पशुओं सा
झेल रहे थे पीड़ा पाशविकता की
पढ़ना मुश्किल, चलना मुश्किल
आम रास्ते से गुज़रना मुकिश्ल
हमारा था जीवन गया- बीता
महाराष्ट्र से सूरज निकला
सिखा दिया शिक्षा है अनमोल रतन
अंबेडकर है नाम उनका
उन्होंने ही राह दिखाई
उनसे ही हमने लड़ना सीखा
उनसे ही बढ़ना सीखा।[6]"

दलित स्त्री जीवन में आई विषमताओं को विश्वास और साहस के पंखों पर बैठ दूर करना चाहती है। वह कहती है-

"ज़िंदगी की खाईयां/
ढेर सारी
आती रहीं सामने
परिवार, जाति, समाज
और धर्म की खाईयां
... पर विश्वास को साथ लिए
दौड़ रही मैं
प्यार के भरोसे से
पाट दूंगी खाईयां
जो फासले बढ़े
अपने हौसलों के पंख से
तय करूंगी दूरियां।"[7]

डॉ. तारा परमार के अनुसार दलित स्त्री का संघर्ष इस बात को लेकर ही है कि उसे मनुष्य समझा जाए। जब स्त्री ने साहित्य-लेखन के क्षेत्र में कदम रखा तो उसकी दबी प्रतिभा को मानो पंख लग गए। "सच कहा जाए तो दलित साहित्य ने उन्हें अपनी-अपनी आपबीती कहने तथा लिखने की ताकत दी है। यही नहीं वे साहित्यिक और सामाजिक आंदोलन की श्रृंखला से जुड़ने लगी हैं। दलित साहित्य में स्वयं दलित महिलाओं ने दस्तक दी है। दलित महिला लेखन में हमें दोनों तरह के चित्र मिलते हैं। पहला तो उसने अपने पिता, पति, भाई या बहन और अन्य साथी के अनुभव के साथ-साथ स्वयं के अनुभव से जो सीखा, दूसरा केवल अपने अनुभव से जो संत्रास पीड़ा, कुंठा और आक्रोश मिला-एक पत्नी के रूप में। उसने जहां ब्राह्मणवादी परंपरा पर चोट की, वहीं अपने ही समाज के पितृसत्तात्मक चरित्र पर भी आघात करते हुए लिखा। इसलिए उसके लेखन में दुहरी तिलमिलाहट पाई जाती है। दलित समाज के ताने-बाने के बीच उसे अपने वजूद की तलाश रही।"[8] वेदनापूर्ण संघर्ष की अभिव्यक्ति इन शब्दों में करती है:-

"मैं कटी झाड़ियों में फंसकर
तड़पने वाली गौरैया हूं
किसी भी तरफ हिलूं
कांटे चुभेंगे मुझे ही
ये आज के कांटे नहीं है
पीढ़ियों से मेरे इर्द-गिर्द फैलाई
गुलामी की जंजीरे हैं
अरे हां अपनी ज़िंदगी को मैंने जिया ही कब?"

– चिल्लापल्ली स्वरूपारानी– (तेलुगु)[9]

अब दलित स्त्री युग की मांग के अनुरूप जातिगत और पितृसत्तात्मक व्यवस्था में परिवर्तन लाकर नए सिरे से इतिहास का रचनाविधान करना चाहती है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंतर्गत संपत्ति का अधिकार केवल पुरुषों को ही प्राप्त होता रहा। स्त्री की श्रमशक्ति पर भी पुरुष का ही एकाधिकार समझा गया। वर्षों से सवर्णों और अवर्णों के अत्याचार सहते-सहते दलित स्त्री एक जिंदा लाश बनकर रह गई। स्थिति यह हो गई है कि अनेक बार उसे अपनी ही करुणापूर्ण स्थिति पर आश्चर्य होने लगता है–

"कबूतर के कटे हुए पर
और गिरे हुए पंख
ढूंढती-ढूंढती
मैं आ पहुंचती हूं
स्वयं के पास
देखती हूं तो
कबूतर
सिंदूर का रेला बनकर
फड़फड़ा रहा है
मेरे मनोखण्ड की दीवार पर
मैं
घर पर कांपती हुई
तड़पते हाथों से
छूती हूं उसे
और चौंक उठती हूं-अरे!
क्षत-विक्षत
मैं
मैं यहां-कहां से?"[10] प्रियंका कल्पित (गुजराती)

तेलुगु काव्य में स्त्री के शोषण के विरुद्ध सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। दलित स्त्री पर अपना अधिकार जमाना हर व्यक्ति अपना हल समझता है। वह कहती है–

"कहते हैं कोई
मुझे बनाकर पीढ़ा
खींच कर बैठेंगे
डालकर नकेल
मुझे हांकेगे- बचाएंगे।"[11] – (तेलुगु) शाशि निर्मला

आधुनिक युग में जब हम वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के पथ पर है, आज भी स्त्री की स्थिति में कोई विशेष अंतर नहीं आया है। वह शिक्षित अवश्य हुई है पर परंपरागत मानसिकता के ढांचे को हम आज भी तोड़ नहीं सके हैं। आज भी यौनशोषण और बलात्कार जैसी घटनाएं आम होती हैं जो स्त्री के वजूद को हिलाकर रख देती हैं। स्त्री यदि निम्न वर्ग की हो तो वह सामाजिक विद्वेष की भी शिकार होती है। दुख की पराकाष्ठा तो तब होती है जब गरीबी की रेखा के नीचे जीने वाले परिवारों में एक बेटी का सौदा नमक की डली या शराब की बोतल के लिए कर दिया जाता है–

"और कितने नमक के ढेले
शत-शत शताब्दी होंगे पार?
क्रमशः शून्यता में लिपटती
नारी का विपन्न चेहरा
शब्दहीन कांपते हुए हर पल
सुना था नारी के
खून से शस्यश्यामला होती वसुंधरा
क्या इसलिए
कन्या शिशुमात्र
एक ढेला नमक के लिए
सिर्फ पच्चीस रूपयों में
बिक जाती है?"[12] – मंजूवाला (बंगला)

* * * * * * *

"बारात में न मैं बांधूं
सुहाग की साड़ी
सौगात की न मैं पहनूं
वरी की साड़ी
एक बोतल शराब की खातिर
मुझे धकेल डाला, हाय री!"[13] इदयवेंदन (तमिल)

आज आवश्यकता है अपने अस्तित्व के लिए जूझती संघर्षरत दलित महिला को आत्मनिर्भर बनाने की और इसके लिए जरूरी है-शिक्षित होना। अशिक्षित व्यक्ति अपने अधिकारों से अपरिचित होता है इसलिए शोषित होता रहता है। दलित स्त्री शिक्षित होकर अज्ञान के अंधकार को मिटाने के लिए कटिबद्ध है। वह जानती है कि ज्ञान का प्रकाश शिक्षा द्वारा ही आ सकता है। निसंदेह पथ में समस्याएं हैं, चुनौतियां है, पर संघर्ष के विषम पथ पर चलती हुई वह अपनी अस्मिता की तलाश में कृतसंकल्प है। वह ऐसा समाज चाहती है जो नयी चेतना से सम्पृक्त हो, जिसमें धर्म और जाति के आधार पर शोषण न किया जाता हो, जिसमें चिंतन-मनन हो। ऐसे समाज के पुनर्निर्माण

के लिए वह दुर्गम पथ पर चलने को तत्पर है। वह सफलता के चरम बिंदु को छूना चाहती है:-

"स्वप्न के उजास में
दूर जाती छांह सी
मिट गई हैं भ्रान्तियां
टूटती हैं ग्रंथियां
जोश के उफान से
पंख की उड़ान से
सफलता की मंज़िलों को
मैं नाप लेना चाहती हूं
प्रगति की हर गति को
चलना है मेरे साथ-साथ
देश, जाति, धर्म का
विकास मेरे साथ-साथ
जब तक है हौसला बुलंद
कौन कर सकता है मंद
उद्दीप्त दीपक राग से
सोए हुए विश्वास को
मैं दीप्त करना चाहती हूं।"[14]

3683, सेक्टर-23।,
गुडगांव, हरियाणा
ईमेल: sunitadelhi3010@gmail.com

संदर्भ सूची

1. प्रभा खेतान : उपनिवेश में स्त्री, पृष्ठ 52
2. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारीसिंह दिनकर, पृष्ठ 102
3. दलित आत्मकथाएं-अनुभव से चिंतन, सुभाषचंद, पृष्ठ 9
4. युद्धरत आम आदमी- अप्रैल-जून 2007, पृष्ठ 7-8
5. हिस्सेदारी के प्रश्न-प्रतिप्रश्न, संपादक- उमाशंकर चौधरी, पृष्ठ 260
6. भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर- (लेखिका : मेरली के पुन्नस) विमल थोरात, सूरज बड़त्या, पृष्ठ 208
7. भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर (लेखिका- कावेरी) विमल थोरात, सूरज बड़त्या, पृष्ठ 20
8. दलित नारी : एक विमर्श-संकलन- डॉ. मंजू सुमन, संपादन- डॉ. ज्ञानेन्द्र रावत, पृष्ठ 171
9. भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर : विमल थोरात, सूरज बड़त्या, पृष्ठ 222
10. वही, पृष्ठ 148
11. दलित नारी विमर्श- संकलन-डॉ. मंजू सुमन, संपादन- डॉ. ज्ञानेन्द्र रावत, पृष्ठ 176
12. भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर : विमल थोरात, सूरज बड़त्या, पृष्ठ 222
13. वही, पृष्ठ 332
14. हमारे हिस्से का सूरज- सुशीला टाकभौरे, पृष्ठ 61